ISSN 2321 –0567
Vol. IV Issue I (Jan- 2016)

मध्य व आधुनिक काल में वृन्दवादन का परिवर्तित स्वरूप

Pinki Bala
(PGT) Lecturer of Music
Aarohi, Model Sr. sec. School Ghirai (Hissar)

Paper Submission Date: 07th Jan. 2016
Paper Acceptance Date: 11th Jan. 2016

कला मानव जीवन एवं व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। कला का सीधा सम्बन्ध मानव जीवन के भावात्मक स्तर से होता है। कविवर रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार "The Art is all media of Artistic self expression through the language of words, sounds, lines and colours." अर्थात् कला सौन्दर्य की प्रतीक एवं आत्मा की सच्ची प्रकार है।

भारतीय ललित कलाओं का उद्देश्य है–परमानन्द की अनुमति।

वाद्यवृन्द का अर्थ एवं उत्पत्ति : हमारे प्राचीन शास्त्रकारो ने कला के 64 प्रकार माने है। जिनमें से संगीत को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। संगीत हृदयगत भावों के उद्घाटन का एक सशक्त माध्यम माना गया है। भिन्न–भिन्न भावाभिव्यक्ति करने वाली विभिन्न ध्वनियों नें ही आगे चलकर विभिन्न वाद्यों को जन्म दिया। वाद्य शब्द अपने आप में बड़ा विस्तृत है जिसकी व्याख्या करना सरल नहीं हैं। वाद्य विभिन्न प्रकार के भावो तथा रस को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। शहनाई की ध्वनि मांगलिक कार्यों की सूचक है। घंटा, घडियाल, शंख आदि की ध्वनि पूजन, हवन ईश्वरोपासना आदि से सम्बंधित कार्यों की घोतक है। यू तो वाद्य का उपयोग गायन, वादन व नृत्य के साथ प्राचीन काल से ही रहा है। लेकिन आज वाद्य का स्वतन्त्र वादन काफी विकसित हो चुका है जिसमें एकल वादन, युगल वादन, समूह वादन सभी शामिल है।

समूह वादन की बात करे तो भारतीय संगीत में वृंदवादन शब्द वाद्यों के सामूहिक प्रयोग का द्योतक है। 'वृंद' का साहित्यिक अर्थ 'समूह' और 'वादन' का अर्थ वाद्यों का बजाया जाना है। सामूहिक रूप से किया गया वाद्यों का वादन या वृंदीकरण ही वास्तव में 'वृंदवादन' है। वृंदवादन शब्द के लिए सर्वप्रथम यूनान में 'आरकेस्ट्रा' शब्द का प्रयोग किया गया। अठाहरवीं शताब्दी में इस शब्द को मान्यता मिल गई। 'आरकेस्ट्रा' मूलतः यूनान में रंगमंच के सामने के एक बड़े अर्द्ध गोलाकार घेरे को कहते थे, जहां समवेत नाच तथा गान हुआ करता था। 'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत का प्रमाणिक आदि ग्रन्थ हैं। इसके आतोद्य–प्रकरण में महर्षि भरत ने विस्तार से वृंद की चर्चा की है, और वृंद विशेष को 'कुतुप' [आरकेस्ट्रा (वृंदवादन)] की संज्ञा दी है। भरतकाल में संगीत, नाट्य पर आश्रित था इसलिए 'कुतुप' का आयोजन भी नाट्य के ही अंतर्गत किया जाता था।

मध्यकाल में वृंदवादन : भारत के नाट्यशास्त्र में 'कुतुप' संज्ञा के अन्तर्गत वृन्दवादन का जितना विस्तृत वर्णन किया गया है सम्भवतः पश्चातवर्ती

ग्रन्थों में कदाचित उससे अधिक सामग्री प्राप्त नहीं होती। फिर भी सामूहिक वादन के उल्लेख यत्र तत्र प्राप्त हो जाते है। संगीत शास्त्रों की प्रवाहित धारा में 13वीं शताब्दी में पं0 शारंगदेव द्वारा लिखित 'संगीत रत्नाकर' में पुनः वृन्दवादन का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है, जो सम्भवतः नाट्यशास्त्र में लिए गए वृंदवादन के वर्णन से ही प्रेरित है। नाट्यशास्त्र का अनुसरण करते हुए संगीत रत्नाकर में तत् कुतुप को घोषवती, चित्रा, विपचीं, पिनाकी एवं आलापिनी आदि वीणाओं के वादक शंख, पाविक, पाव, मुहरी एवं श्रृंग वाद्यों के वादक तथा अन्य ताल धारियों से युक्त बनाया है।

संगीत रत्नाकर में वृंद के तीन भेद बताए गए है–उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ। उत्तम वृंद में मुख्य गायक चार, आठ सामगायक, बाहर गायिका, चार वांशिक और चार मृदंग वादक कहे गए है। 13वीं शताबदी के पश्चात् भारतीय सत्ता की बागडोर मुसलमान शासकों के हाथ में आ गई। मुसलमानों का शासन भारत पर लगभग 500 वर्ष तक रहा जिसमें न केवल भारत के राजनैतिक व समाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया बल्कि भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य का भी हास हुआ और जो संस्कृति उस समय में फली–फूलीं वह मुस्लिम संस्कृति से प्रेरित थी। मुगलकाल में वाद्यों के सामूहिक वादन को 'नौबत' की संज्ञा दी गई।

नौबत में शहनाई और नगाड़े बजाए जाते थे। 'मुरसली' और 'वरदास्त' ये दो प्रकार की धुनें थी जो सम्पूर्ण वृंद द्वारा बजाई जाती थी। यह एक पूरा वृंदवादन था। इरबसाती, इब्तदाई, सिराज, कलन्दरी, निगारतर, नुखुदकतर इन धुनों के वादन में पूरा एक घंटा लगता था।

यह सात प्रकार की धुने मुगलकाल में वृंदवादन के रूप में प्रदर्शित होती थी।

मुगलकाल में विभिन्न वाद्यों का उल्लेख मिलता है। मुस्लिमकाल में वाद्यों के सामूहिक प्रयोग के लिए 'नौबत' की संज्ञा प्राप्त थी जिसके अन्तर्गत नक्कारा, ढोल, कर्ना, सुर्ना, दमामा, नफीरी, साज, सींग तथा झांझ इन नौ वाद्यों का वादन किया जाता था। नौबत के अन्तर्गत आने वाले वाद्यों का वादन राजाओं को जगाने, युद्ध के समय, भोजन के समय, स्नान के समय, स्वागत के अवसर पर, विवाह आदि मंगल अवसरों तथा भक्तिपरक पदों के समय होता था।

नौबत से तात्पर्य है उत्सव या मंगल सूचक जो देव मन्दिरों, राज प्रसादों या बड़े आदमियों के द्वारा बजता था। मुगलकाल में 'नौबत' वृंदवादन एक उच्चकोटि तथा एक प्रमुख बैण्ड के रूप में उभरकर सामने आया। नौबत बैण्ड दिन के प्रहरों का भी सूचक था। यह दिन में दो बार बजाया जाता था, एक उषाकाले तथा दूसरा मध्यरात्रि।

औरंगजेब के समय में कुछ पारस्परिक वाद्य बजाने वाली जाति 'नखा' कहलाती थी, ये लोग पखावज, झांझ और रबाब बजाते थे और साथ में गाते व नाचते भी थे।

16वीं शताब्दी में अकबर का काल संगीत कला के विकास की दृष्टि से 'स्वर्ण–युग' कहा जाता है। इस काल में 'हृदय प्रकाश', 'हृदय कौतुक', 'संगीत परिजात', 'राग तत्व विबोध', 'सद्राग चन्द्रोदय', 'रागमंजरी', स्वरमेलकलानिधि', 'राग विबोध', चतुर्दण्डिप्रकाशिका' आदि अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गए है।

आधुनिक काल में वृंदवादन : वर्तमान परिपेक्ष्य में यदि वृन्दवादन की सार्थकता का विवेचन किया जाये तो आधुनिक भारतीय संगीत में 'वृंदवादन' एक विकसित रूप धारण कर चुका है जिसका श्रेय सर्वप्रथम ऊ. अलाऊद्दीन खाँ साहब को जाता है।

अंग्रेजो के भारत में आने के कारण यहां की सभ्यता व संस्कृति पर अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव पड़ना आरंभ हो गया। अंग्रेजी सभ्यता में वृंदवादन का विशेष महत्त्व माना गया तथा जिसे आरकेस्ट्रा या उसी के किंचित परिवर्तित रूप को बैण्ड कहा जाता है। आरकेस्ट्रा वाद्यों का एक कलात्मक रूप है जिससे स्वर और ताल के अनेकोनेक स्वर समुदायों को भिन्न–भिन्न प्रकार के 'काडर्स', 'हारमनी' तथा अनेकानेक संगीतिक तकनीकी प्रयोगों के माध्यम से इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है कि सौन्दर्य अनुभूति की जा सके।

आधुनिक कालीन वृन्दवादन की नींव अलाऊद्दीन खाँ साहब ने डाली। ऊ. अलाऊद्दीन खाँ ने सन् 1920 ई. के आस–पास ''मैहर बैण्ड'' तैयार किया। 40 सदस्यों का यह बैण्ड 'मैहर स्ट्रिंग बैण्ड' के नाम से जाना जाता था। इस वृंदवादन की रचनाएँ शास्त्रीय रागो पर आधारित थी। इस वृंदवादन में शास्त्रीय रचनाओं के अतिरिक्त राजस्थानी घूमर, मांड, कलकत्ता का बाउल, धुन एवं मालवा की लोकधुनों को सम्मिलित किया गया। इन्होंने अपने वृन्दवादन में निम्नलिखित वाद्यों का प्रयोग किया–सितार, बैंजी, वायलिन, बांसुरी, दिलरूबा, सारंगी, तबला, पियानो, हारमोनियम, नेलो, इसराज, सरोद तथा गायक–गायिका।

पं. रविशंकर जी ने सन् 1952–53 में आकाशवाणी में थीम या विषय पर आधारित वृंदवादन की रचना की जैसे–गाँव की गौरी, कारवां, निर्झर, ऊषा, आहान आदि। आहान 15 अगस्त के अवसर पर बजने वाला वृंदवादन है। पं. रविशंकर ने 19 दिसम्बर सन् 1982 को 'Research Institute for Music and Performing Arts' के कार्यक्रमान्तर्गत एक वृंदवादन 'ताल कचहरी' का भी विकास किया।

डॉ. लालमणि मिश्र जी ने 'सृष्टिचक्र' नामक एक सुन्दर वृंदवादन जिसमें प्रातः काल से मध्यरात्रि तक के रागो का समन्वय किया गया था कि रचना की। जुबीन मेहता जो न्यूयॉर्क (New York) मे फिल हार्मोनिक आरकेस्ट्र (Fill Harmonic Orchestra) में म्यूजिक डायरैक्टर के पद् पर कार्यरत है ने भी वृंदवादन में विशेष योगदान दिया। सन् 1989 में इन्हें वृन्दवादन के सर्वोत्तम संचालन के लिए 'Mikisch Ring' पुरस्कार रूप में प्रदान की गई।

आधुनिक युग में वृंदवादन को ओर अधिक विकसित रूप एवं महत्वपूर्ण स्थान पार्श्व संगीत, चित्रपट संगीत, लोकसंगीत, चलचित्रीय संगीत ने दिया है। आधुनिक युग में वृंदवादन के अनेक माध्यम की उभरकर आए जैसे– 1. आकाशवाणी, 2. टेलीविजन (सिनेमा)।

1. आकाशवाणी एवं वाद्यवृंद : नेशनल आरकेस्ट्रा अर्थात् 'आकाशवाणी वृंद' आकाशवाणी ने भी वृंदवादन के विकास में विशेष रूचि ली है। विशेष रूप से दिल्ली केन्द्र ने अग्रणीय कार्य किया। सर्वप्रथम सन् 1952 ई. में ''A.I.R. National Orchestra'' की स्थापना की गई तथा इसके प्रथम निर्देशक पं. रविशंकर नियुक्त हुए थे। आकाशवाणी वाद्य वृंद रचनाओं में राग मल्लिका, भाव, प्रसंग इत्यादि को मध्य नजर रखते हुए कार्य होता है।

राग को सम्मुख रखते हुए संवाद का प्रयोग किया जाता है। विदेशी वाद्यों में केवल वायलिन परिवार को रखा गया है परन्तु उसकी प्रयुक्ति भारतीय शैली में ही होती है। संचालक द्वारा ही इसका प्रस्तुतीकरण होता है परन्तु पाश्चात्य संचालक की भांति सांकेतिका (cSVu) का प्रयोग इसमें नहीं किया जाता क्योंकि बैटन इसके लिए कम महत्व की चीज है।

स्वरलिपि : स्वरलिपि मुख्यतः भातखण्डे पद्धति की अपनाई जाती है। जिसे प्रस्तुतीकरण के समय प्रत्येक कलाकार के समक्ष रखा जाता है।

बैठक : आकाशवाणी वाद्य वृंद की बैठक में वाद्यों की कम तथा अधिक ध्वनि के अनुसार वाद्यकारों के बैठने के स्थान निश्चित किए जाते है। साधारणतया वीणा वादक सबसे आगे बैठते है तथा चैलो और वायलिन सबसे पीछे। अन्य वाद्यों का स्थान ध्वनि के अनुसार निश्चित किया जाता है। आकाशवाणी वाद्य वृन्द की अवधि वैसे तो 5, 10 तथा 15 मिनट तक ही है परन्तु यह अवधि बढ भी सकती है।

ऊ. अल्लाऊद्दीन खाँ ने उदयशंकर के नृत्यों में भी वृंदवादन के महत्वपूर्ण प्रदर्शन किए। दिल्ली आकाशवाणी ने कुछ नए प्रयोग भी किए हैं जैसे मल्हार की पार्श्व भूमि पर 'मेघ गर्जना' से वर्षा आदि का स्वरो द्वारा आभास निर्माण करना। अंग्रेजी में इसे Subjective music कहते है। 'आल इंडिया रेडिया' के बम्बई–स्टेशन में वाल्टर काफमैन ने कुछ बड़े चतुरतापूर्ण प्रयोग किए है। उसकी छः भागों की एक रचना में, प्रत्येक भाग में 1 राग है। इसके बाद उन्होंने 9 रागों की एक ओर रचना की। आज आकाशवणी के प्रत्येक केंद्र में कुछ संगीतज्ञ नियुक्त है तो गीतो के साथ पृष्ठभूमि में अथवा कभी–कभी स्वतन्त्र वाद्यवृंद प्रस्तुत करते है।

टेलीविजन : टेलीविजन की बात करे तो चाहे कोई भी टी.वी. चैनल हो उसमें संगीत एवं पार्श्व संगीत का प्रयोग किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। निःसंदेह ही दूरदर्शन पर कार्यक्रमों के प्रसारण का एक बहुत बडा भाग संगीत पर आधारित है परन्तु जिस भाग में मूलतः संगीत के कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं होता, उसमें भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में संगीत निहित रहता है। संगीत के माध्यम से अवांछित मौन अथवा खाली स्थान को भरा जाता है। फिल्मों व नाटकों आदि में आश्चर्य, करूणा, वीरता, भय, श्रृंगारिकता व हास्य आदि भावों को विभिन्न वाद्यों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाने लगा।

ऐसा माना जाता है कि पश्चिमी परम्परा में पार्श्व संगीत का प्रयोग प्रथम बार किसी न किसी अंश में ऑपेरा में होना शुरू हुआ। भारत में सर्वप्रथम नौशाद साहब ने पाश्चात्य वाद्यों का प्रयोग फिल्म 'जादू' में किया था। पार्श्वसंगीत में मैंड़ेलिन और बांसुरी को प्रमुखता दिलाने का श्रेय इन्हीं को जाता है। विभिन्न प्रकार के ध्वनि प्रभाव (Sound effects) का प्रयोग भी विभिन्न वाद्यों के माध्यम से किया जाता है। फिल्म 'कर्ज' के वृंदगीत 'मेरी उम्र के नौजवानों' में गिटार का प्रयोग गीत में जोश उत्पन्न करता है। इसके अलावा भी अन्य अनेक फिल्मों में विभिन्न वाद्यों का प्रयोग पार्श्व संगीत के रूप में हुआ है।

पार्श्व संगीत जिसका आधार वाद्यवृंद है, एक ऐसी वस्तु अथवा माध्यम है जो हमारे अस्तित्व के गुणों को प्रतिबिम्बित करने में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तर ब्रिटिश काल एवं आधुनिक युग

में फिल्म उद्योग ने कला के प्रचार एवं विकास में सर्वाधिक योगदान दिया है। वृंदवादन संगीत कथानक को प्रवाह प्रदान करता है, इसलिए फिल्म में वृंदवादन को चित्रपट संगीत की अनविार्यता के रूप में प्रतिस्थापित किया है। फिल्मों का निर्माण उत्तर ब्रिटिश काल में ही शुरू हो गया। सन् 1930 ई. तक मूक फिल्में ही निर्मित होती रही। परन्तु धीरे–धीरे प्रेक्षाग्रहों ;जैमंजतमद्ध में पर्दे के पीछे से फिल्म का वृत्तान्त प्रस्तुत किया जाने लगा और संगीत के लिए हारमोनियम, तबला व ढोलकी का प्रयोग तरह–तरह के भाव व्यक्त करने के लिए किया जाने लगा। लेकिन जब प्रथम बोलती फिल्म 'आलम आरा' 1931 में बनी, इसमें 7 गीत थे जिनके साथ वाद्यों का प्रयोग वृंदवादन के रूप में किया गया था वे थे, हारमोनियम, तबला, ढोलकी, बांसुरी।

फिल्म वृंदवादन का मुख्य उद्देश्य दृश्य को उभारना है।

जैसे– 1. दृश्य में नृत्य नाटिका या नृत्य के समय वृंदवादन का प्रयोग।

2. दृश्य में मूक वातावरण की संगीत के माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति।

3. गीत के स्थाई तथा अन्तरे के पूर्व तथा मध्य वृंदवादन द्वारा संगीत।

इन तीनो स्थितियों में वृंदवादन, गायन अथवा किसी वाद्य विशेष का आश्रय लिया जाता है।

फिल्म जगत में उच्च कोटि का संगीत प्रयुक्त होता है तथा जिसमें वृंदवादन उभरे बिना नहीं रह सकता। इन संगीत निर्देशको में श्री अनिल विश्वास (हमदर्द), स्व. शंकरराव ध्याय (राम राज्य), नौशाद अली (बैजू बावरा), गुलाम मुहम्मद (पाकीजा), शंकर जय किशन (बसंत बहार), रविशंकर (अनुराधा), रोशन (बरसात की रात) के नाम उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि चित्रपट संगीत या फिल्मी संगीत तो है ही वृंदवादन से ओत–पोत। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'वृंदवादन' शब्द वाद्यों के सामूहिक प्रयोग का द्योतक है। वृंदवादन का स्वरूप निरूतर बदलता रहा है। मध्यकाल में वृंदवादन (Orchestra) इतना विकसित नहीं था परन्तु आधुनिक काल में वृंदवादन ने आसमान को छू लिया। आज फिल्म जगत का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसमें वृंदवादन प्रयोग न किया जाए। विषय–सम्बध के आदरणीय विद्वानों के अमूल्य सुझाव साद आमंत्रित है।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. कविता चक्रवर्ती, ''भारतीय वाद्यवृंद'' संगीतः अगस्त 1989
2. डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग, रविशंकर के आरकेस्ट्रा, प्रस्तावना से।
3. डॉ. कविता चक्रवर्ती, ''भारतीय संगीत में वाद्यवृंद'', पृ. 11
4. अबुल फज़ल, आईने अकबरी, (अनुगलेडविन) 1783, पृ. 734
5. रविशंकर के आरकेस्ट्रा, पृ. 90
6. रविशंकर के आरकेस्ट्रा, पृ. 90, पृ. 116
7. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत निबंध संग्रह, पृ. 19
8. डॉ. स्वतन्त्र शर्मा, पाश्चात्य स्वर लिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, पृ. 129

9. डॉ. नारायण मेनन, भारतीय संगीत और वृंदवादन, निबंध संगीत, पृ. 177
10. अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रमः आकाशवाणी वाद्यवृंद, 8 जून, 1968, संगीतः जुलाई 1968
11. अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रम : आकाशवाणी वाद्यवृंद, पृं. 58, संगीतः जुलाई 1968
12. स्वामी वाहिद काजमी, पार्श्व संगीत, संगीत : जुलाई 2004, पृ. 27
13. डॉ. अशोक कुमार 'यमन' रेडियो और संगीत, पृं. 154
14. स्वामी वाहिद काजमी, पार्श्व संगीत, संगीत : जुलाई 2004, पृ. 29
15. डॉ. विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ. 11
16. Firoze Rangonewala, Indian Cinema, Past and Present, Page 12
17. डॉ. पन्नालाल घोष, संगीत कला का इतिहास, पृं. 176